

अवधारणा
(CONCEPT)

भारत एक विशाल देश है, जिसमें कई विविधताएँ हैं। यह आदिकाल से ही अलग-अलग धर्मों, मतों, सम्प्रदायों, संस्कृतियों, जातियों, प्रजातियों व जनजातियों की कर्मभूमि रहा है। इन सभी ने यहाँ की सामाजिक व्यवस्था एवं संगठन के निर्माण में विशेष भूमिका निभायी है और उन्हें एक विशेष स्वरूप प्रदान किया है। जाति व्यवस्था, जनजाति व्यवस्था, ग्राम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त और संस्कार व्यवस्था भारतीय समाज के प्रमुख आधार हैं।

भारत देश की समस्त जनसंख्या का लगभग 8% भाग आदिम जातियों अथवा जनजातियों द्वारा निर्मित है। वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में 5.16 करोड़ जनसंख्या जनजातियों की थी, जो बढ़कर 1991 में 6.78 करोड़ हो गई थी और वर्ष 2001 में 8.35 करोड़ हो गई। प्रायः अधिकांशतः जनजातियाँ ऐसे भौगोलिक क्षेत्रों में रहती हैं जहाँ सभ्यता का प्रकाश बहुत कम पहुँचा है। आज भी कई जनजातियाँ आदिम स्तर पर ही अपना जीवन बिता रही हैं, जबकि दुनिया के अधिकतम देश विकास के पथ पर काफी आगे बढ़ चुके हैं।

पश्चिमी विद्वानों ने जाने-अनजाने में भारतीय जनजातियों के इतिहास पर कोई सामग्री उपलब्ध नहीं हुई है, सामान्यतः मौन ही रखा है। उन्हें इतिहास-विहीन समाज बताकर छोटा आँकने की कोशिश की है। इसके अतिरिक्त विदेशी लेखकों ने ऐतिहासिक प्रमाणों के उपलब्ध न होने पर भी जनजातियों को मूढ़ और असभ्य कहने की भूल की तथा उन्हें 'जड़' समाज के रूप में चित्रित करने की कोशिश की। कई विदेशी लेखकों ने जनजातियों को भूत-प्रेत पूजक अथवा एनीमिस्ट प्रमाणित करने का प्रयास किया जबकि ये लोग हिन्दू धर्म के मूल रूप के ही अनुयायी रहे हैं।

आज भी कई दुर्गम क्षेत्रों में बहुत-से ऐसे मानव समूह पाये जाते हैं जो पिछले सैकड़ों वर्षों से शेष संसार की सभ्यता से दूर रहकर अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से पहचान बनाए हुए हैं। ये मानव समूह घने जंगलों, ऊँचे पर्वतों, मरुस्थलों और पठारी क्षेत्रों में रहते हैं। उन क्षेत्रों को प्रायः अनुत्पादक माना जाता है। इन मानव समूहों का लिखित इतिहास प्रायः उपलब्ध नहीं है। ऐसे मानव समूहों को आदिवासी, कबीली आबादी, आदिमवासी और जनजाति जैसे नामों से पुकारा गया है। ये शब्द अंग्रेजी भाषा के 'नेटिव' 'एबोरिजनल' एवं ड्राइव शब्दों के ही अनुवाद हैं। इन्हें आदिम अथवा आदिवासी इसलिए कहा जाता है कि ये भारत के प्राचीनतम निवासी माने जाते हैं और सम्भवतः भारत में द्रविड़ों के आगमन से पहले यहाँ ये ही लोग रहते थे। वेरियर एल्विन भी इन्हें आदिम जाति के नाम से सम्बोधित किया करते हैं। आपने लिखा है कि, "आदिवासी भारतवर्ष की वास्तविक स्वदेशी उपज हैं जिनकी उपस्थिति तथा शायद हजारों वर्ष पुराने हैं। वे सबसे पहले यहाँ आए।" आदिवासी के मसीहा ठक्कर बापा और भारतीय संविधान निर्मात्री सभा के सदस्य जयपाल सिंह ने इन्हें आदिवासी के नाम से सम्बोधित किया है।

श्रीकान्त ने जनजातियों के नामों के बारे में लिखा है कि, जनजातियाँ भारतवर्ष में अलग-अलग समयों में अलग-अलग नामों से जानी गयी हैं; जैसे—आरण्यक, रानीपरज और आदिवासी। इन सभी

शब्दों की अलग-अलग अपनी-अपनी कमियाँ हैं और प्रत्येक शब्द से जनजाति का एक ही पक्ष उजागर हो पाता है, जैसे—किसी क्षेत्र के मूल निवासियों के लिए 'आदिवासी' शब्द उपयुक्त है 'जनजाति' शब्द भी परिवारों और पारिवारिक वर्गों के समूह का सूचक है। जनजाति और आदिवासी शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। जनजाति शब्द अंग्रेजी के 'Tribe' शब्द का हिन्दी अनुवाद है, 'Tribe' शब्द लैटिन भाषा के 'Tribes' शब्द से बना है। पहले रोम में इस शब्द का उपयोग समाज के अलग-अलग भागों के लिए किया जाता था, किन्तु बाद में इसका उपयोग समाज के निर्धन वर्ग के लिए होने लगा। जनजातीय लोग अपेक्षाकृत अलग और अन्तर्मुखी समूह हैं जो उत्पादन और उपभोग की दृष्टि से समाज हैं। अन्य लोगों की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े होने के कारण इनका शोषण होता रहा है।

भारत के प्राचीन साहित्य में जनजाति शब्द का वर्णन तो नहीं मिलता, किन्तु इन समूहों को अपने विशेष नामों से ही जाना जाता था, जैसे—गोंड संधाल एवं भील।

जनजाति का अर्थ एवं परिभाषाएँ

(MEANING AND DEFINITIONS OF TRIBE)

गोत्र का एक व्यापक स्वरूप जनजाति है। यह खानाबदोशी जत्थे, झुण्ड, गोत्र, भ्रातृदल एवं अर्द्धांश से अधिक विस्तृत और संगठित होती है। जनजाति को परिभाषित करते हुए गिल्लिन एवं गिल्लिन लिखते हैं कि, "स्थानीय आदिम समूहों के किसी भी संग्रह को जोकि एक सामान्य क्षेत्र में रहता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता हो, एक जनजाति कहते हैं।"

"Any collection of preliterate local groups which occupies a common general territory, speaks a common language and practices a common culture is a tribe."

—Gillin and Gillin, *Cultural Sociology*, p. 282.

डॉ. मजूमदार लिखते हैं, "एक जनजाति परिवारों या परिवारों के समूह का संकलन होता है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग में रहते हैं, समान भाषा बोलते हैं और विवाह, व्यवसाय या उद्योग के विषय में निश्चित निषेधात्मक नियमों का पालन करते हैं और पारस्परिक कर्तव्यों की एक सुविकसित व्यवस्था को मानते हैं।"

हॉबल का कथन है कि "एक जनजाति एक सामाजिक समूह है जो एक विशेष भाषा बोलता है और एक विशेष संस्कृति रखता है जो उन्हें दूसरे जनजाति समूहों से पृथक् करती है। यह अनिवार्य रूप से सामाजिक संगठन नहीं है।"

चार्ल्स विनिक ने जनजाति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "एक जनजाति में क्षेत्र, भाषा, सांस्कृतिक समरूपता तथा एक सूत्र में बँधने वाला सामाजिक संगठन आता है। यह सामाजिक उप-समूहों, जैसे गोत्रों अथवा गाँवों को शामिल कर सकता है।"

रॉल्फ पिडिंगटन के शब्दों में, "हम एक जनजाति की व्यक्तियों के एक समूह के रूप में व्याख्या कर सकते हैं, जोकि समान भाषा बोलता हो, समान भू-भाग में निवास करता हो तथा जिसकी संस्कृति में समरूपता पायी जाती हो।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि जनजाति एक ऐसा क्षेत्रीय मानव समूह है जिसकी एक सामान्य संस्कृति, भाषा, राजनीतिक संगठन और व्यवसाय होता है तथा जो सामान्य रूप से अन्तर्विवाह के नियमों का पालन करता है।

अनुसूचित जनजातियाँ

(SCHEDULED TRIBES)

समाजशास्त्रियों का यह मत है कि भारतीय आदिवासियों के लिए उपयुक्त सम्बोधन 'पिछड़े हुए जनजाति' कहना चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद अनुसूचित जनजातियों का संरक्षण और विकास संविधान का दायित्व समझा गया। इस कार्य को करने के लिए जनजातियों की एक सूची तैयार की

गयी। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के खण्ड 1 में यह बताया गया है कि राष्ट्रपति सार्वजनिक सूचना द्वारा जनजातियों, जनजातीय समुदायों व जनजातियों के भीतरी समूहों की घोषणा करेंगे। इस सूचना में जिन जनजातियों, जनजातीय समुदायों और जनजातियों के भीतरी समूहों को शामिल किया जाएगा, वे सभी अनुसूचित जनजाति कहलाएँगे। जनजातियों की सूची में समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा नामों को बढ़ाया जा सकता है। विगत 50 वर्षों में अनुसूचित जनजाति की सूची में पूर्व में शामिल नहीं की गयी कई नयी जनजातियों को सम्मिलित किया गया।

अतः यह स्पष्ट है कि अनुसूचित जनजाति की संख्या अधि-सूचनाओं के आधार पर घटती अथवा बढ़ती रही है। संविधान में जनजाति की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। प्रशासनिक दृष्टि से जिन जनजातियों के नामों का संविधान में उल्लेख किया गया है, उन्हें अनुसूचित जनजातियाँ कहा जाता है।

अनुसूचित जनजाति की सूची में अनुसूचित जनजातियों की संख्या में समय-समय पर होने वाली वृद्धि के दो प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(i) विभिन्न नई जनजातियों को जनजातियों के रूप में मान्यता मिल जाना,,

(ii) जनजातियों के उपभागों अथवा खण्डों को जनजाति का दर्जा/स्थान मिल जाना।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय संविधान में उन वर्गों के उत्थान व कल्याण हेतु विशेष प्रावधान किए गए हैं, जोकि सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। इसी आशय से जिन जनजातियों के नाम संविधान की अनुसूची में शामिल किए गए हैं, उन सभी को 'अनुसूचित जनजाति' कहा जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि जनजाति व अनुसूचित जनजाति में मुख्य अन्तर यही है कि जनजाति में देश में पाई जाने वाली समस्त जनजातियाँ आ जाती हैं जबकि अनुसूचित जनजाति में केवल वे ही जनजातियाँ आती हैं, जिन्हें संविधान में शामिल किया गया है और जिन्हें शामिल करने की राष्ट्रपति ने समय-समय पर स्वीकृति प्रदान की है।

जनजाति की विशेषताएँ

(CHARACTERISTICS OF TRIBE)

जनजाति एक सरल समुदाय है। यही वजह है कि जब हम सरल व जटिल समाजों के मध्य कोई अन्तर करते हैं, तो सरल समाजों के उदाहरण रूप में किसी जनजाति की विशेषताओं का ही वर्णन किया जाता है। जनजातीय समाज कम विभेदीकृत होते हैं, इनमें परम्परा और रुढ़िवादिता का बोलबाला होता है और धर्म को प्रधानता दी जाती है। ये आकार की दृष्टि में छोटे होते हैं, जिनमें वैयक्तिक सम्बन्धों की प्रधानता होती है, ये समष्टिवादी होते हैं, इनमें गतिशीलता की कमी होती है और भिन्नता के स्थान पर समानताएँ अधिक होती हैं। इनमें प्राथमिक समूह की प्रधानता होती है तथा सामाजिक नियन्त्रण के लिए अनौपचारिक साधनों का प्रयोग अत्यन्त प्रचलित है; जैसे—प्रथा, परम्परा, जनरीति, नैतिकता व धर्म। इन विशेषताओं के अलावा जनजातीय समाज की कुछ विशिष्ट विशेषताएँ हैं, जिनका निम्नवत् वर्णन किया जा रहा है—

1. एक क्षेत्रीय समूह (A Terretorial Group)—एक जनजाति के सभी व्यक्ति किसी निश्चित भू-भाग पर ही निवास करते हैं, इसलिए जनजाति को एक क्षेत्रीय समूह कहते हैं। निश्चित भू-भाग पर साथ-साथ रहने के कारण ही उनमें एक दृढ़ सामुदायिक भावना का विकास हो जाता है। कई जनजातियाँ ऐसी हैं जो स्थान परिवर्तन करती रहती हैं, किन्तु यह स्थान परिवर्तन भी एक विशिष्ट भू-भाग के भीतर ही होता है।

2. सामान्य भाषा (Common Language)—हर एक जनजाति की अपनी एक अलग भाषा होती है और इसी भाषा के द्वारा एक जनजाति के लोग अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। भाषा के माध्यम से ही वह अपनी संस्कृति का हस्तान्तरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को करते हैं, लेकिन सभ्यता के सम्पर्क के कारण बहुत-सी जनजातियाँ द्विभाषी हो गयी हैं।

3. विस्तृत आकार (Large Size)—एक जनजाति में बहुत-से परिवारों का संकलन होता है। इसमें कई वंश, गोत्र, समूह और भातृदल होते हैं। यही वजह है कि इनकी सदस्य संख्या अन्य क्षेत्रीय समुदायों से ज्यादा होती है।

4. अन्तर्विवाही समूह (Endogamous Group)—जनजाति अन्तर्विवाही समूह है। इसका अर्थ यह है कि एक जनजाति के सदस्य अपनी ही जनजाति में विवाह करते हैं।

5. एक नाम (A Name)—हर एक जनजाति का अपना कोई नाम अवश्य होता है, जिसके द्वारा वह पहचानी जाती है। उसके सदस्य जनजाति के नाम के आधार पर ही अपना परिचय देते हैं।

6. सामान्य संस्कृति (Common Culture)—हर एक जनजाति के सभी सदस्यों की अपनी सामान्य संस्कृति होती है। उनके रीति-रिवाजों, प्रथाओं, विचारों, लोकाचारों, नियमों, विश्वासों, मूल्यों, कला, धर्म, जादू संगीत, नृत्य, भाषा, रहन-सहन, खान-पान इत्यादि में समानता होती है।

7. आर्थिक आत्मनिर्भरता (Economic Self-sufficiency)—एक जनजाति अपनी समस्त आर्थिक आवश्यकताओं को स्वयं ही पूरा कर लेने में सक्षम होती है। शिकार, फल-फूल एकत्रित करने, पशुचारण, कृषि और गृह-उद्योग इत्यादि के द्वारा अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ जनजाति के सदस्य स्वतः ही जुटा लेते हैं। हालाँकि कभी-कभी वह अपने पड़ोसी समाजों से भी विनिमय करते हैं।

8. राजनीतिक संगठन (Political Organization)—प्रत्येक जनजाति का अपना एक निजी राजनीतिक संगठन होता है। इसमें एक वंशानुगत मुखिया होता है, जो परम्पराओं का पालन कराने, नियन्त्रण बनाए रखने और नियमों का उल्लंघन करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था करता है। कहीं-कहीं मुखिया की मदद के लिए वयोवृद्ध व्यक्तियों की एक परिषद् भी होती है। कुछ विद्वानों ने राजनीतिक संगठन को जनजाति के लिए जरूरी नहीं माना है।

9. धर्म (Religion)—प्रत्येक जनजाति का अपना एक विशेष धर्म भी होता है। इनके धर्म में प्रकृति पूजा, आत्मावाद, जीवसत्तावाद तथा मानावाद की प्रधानता होती है। ये लोग कई अवसरों पर अनेक जादुई क्रियाएँ/गतिविधियाँ भी करते हैं।

10. सामान्य निषेध (Common Taboo)—प्रत्येक जनजाति खान-पान, परिवार, विवाह, धर्म व व्यवसाय से सम्बन्धित समान निषेधों का पालन करती है।

11. सामुदायिक भावना (Community Spirit)—एक निश्चित भू-भाग में निवास करने के कारण प्रत्येक जनजाति के सदस्यों में 'सामुदायिक भावना' अथवा 'हम की भावना' पायी जाती है। इसी भावना के कारण वे एक-दूसरे को सहयोग और सहायता देते हैं तथा संकट के समय एक का प्रदर्शन करते हैं।

12. सामान्य पूर्वज (Common Ancestor)—बहुत-सी जनजातियाँ अपनी उत्पत्ति किसी एक ही सामान्य पूर्वज से मानती हैं। यह पूर्वज काल्पनिक भी हो सकते हैं और वास्तविक भी।

13. नातेदारी का महत्व (Importance of Kinship)—जनजाति में नातेदारी को विशेष महत्व दिया जाता है। जनजातीय लोग अपने राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सम्बन्ध अपने नातेदारों तक ही सीमित रखते हैं। उनके कानूनों और प्रथाओं का पालन भी नातेदारी तक ही सीमित होता है।

इवान्स प्रिचार्ड ने जनजाति समाज की विशेषताओं का पालन भी नातेदारी तक ही सीमित होता है। समाज जनसंख्या, क्षेत्र तथा सामाजिक सम्पर्कों का वर्णन करते हुए लिखा है कि इस तरह के उन्नतिशील/विकासशील समाजों की तुलना में आसान होती है और अर्थव्यवस्था भी आसान होती है, जिनमें सामाजिक कार्यों का विशेषीकरण कम मात्रा में होता है।

रॉबर्ट रेडफ़ेल्ड ने जनजाति समाज की इन विशेषताओं में कुछ और अन्य विशेषताएँ जोड़ दी हैं; जैसे—साहित्य, व्यवस्थित कला, विज्ञान और आत्मविद्या की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं—

(i) जनजातीय अथवा आदिम समाज की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई हैं—
जाती है।

(ii) जनजातीय समाज में प्रौद्योगिक विकास का निम्न स्तर होता है, इनमें लेखन अथवा लिपि नहीं पायी

- (iii) जनजातीय समाजों का संगठन आसान होता है और इसका निर्माण छोटे-छोटे सामाजिक वर्गों के आधार पर होता है; जैसे—परिवार, गोत्र एवं अर्द्धांश।
- (iv) जनजातीय समाज में आर्थिक विशेषीकरण और सामाजिक समूह की बहुलता की कमी होती है।
- (v) जनजातीय समाज में नातेदारी और स्थान के आधार पर बने सामाजिक सम्बन्ध ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं।

जाति एवं जनजाति के बीच अन्तर

(DIFFERENCE BETWEEN CASTE AND TRIBE)

जाति एवं जनजाति के बीच निम्नांकित अन्तर है—

1. जाति का कोई निश्चित भू-भाग नहीं होता है, जबकि जनजाति एक ऐसा सामाजिक समूह है जो एक निश्चित भू-भाग पर बसा होता है।
2. जाति मुख्य रूप से जन्म के आधार पर विकसित होती है, जबकि जनजाति एक निश्चित भू-क्षेत्र में निवास करने के कारण विकसित होती है।
3. एक जाति में अनेक उपजातियाँ होती हैं, जबकि एक जनजाति में कोई उपजाति नहीं होती है।
4. प्रत्येक जाति का एक निश्चित परम्परागत व्यवसाय रहा है, लेकिन किसी जनजाति का कोई एक निश्चित व्यवसाय नहीं होता तथा न ही उसके सदस्यों पर कोई व्यवस्था सम्बन्धी नियन्त्रण होते हैं।
5. जाति में अन्तर्विवाह के कठोर नियम होते हैं, जबकि जनजाति में ये नियम लचीले होते हैं।
6. जाति में कोई राजनीतिक संगठन नहीं होता है, जबकि प्रत्येक जनजाति का एक राजनीतिक संगठन होता है।
7. जाति के गोत्र के नाम ऋषियों के आधार पर होते हैं, जबकि जनजातियों में गोत्र के नाम टोटम, पशु, पेड़-पौधों इत्यादि के आधार पर होते हैं।
8. जाति व्यवस्था में संस्तरण और अस्पृश्यता की भावना पायी जाती है, जबकि एक जनजाति में ऊँच-नीच की भावना व अस्पृश्यता नहीं पायी जाती है।
9. जातियाँ आत्मनिर्भर नहीं होती हैं, जबकि जनजातियाँ आत्मनिर्भर होती हैं।
10. जनजातियाँ अपनी उत्पत्ति किसी काल्पनिक पूर्वज से मानती हैं, जबकि जातियाँ ऐसा नहीं मानती हैं।
11. जनजातियों के अपने-अपने टोटम होते हैं, जिसे ये पवित्र मानते हैं तथा जिसकी आध्यात्मिक शक्ति में ये विश्वास करते हैं। जातियों में टोटम जैसी किसी शक्ति में कोई विश्वास नहीं किया जाता है।

बेली का यह मानना है कि जनजातियों को एक ऐसे सतत् सेतु की भाँति मानना चाहिए जिसके एक तरफ जनजातियाँ हैं और दूसरी तरफ जातियाँ हैं। जनजातियों की संरचना पृथक्कृत व समतावादी है जबकि जातियों की जैविक एकात्मवादी वाली संरचना की भाँति अन्योन्याश्रित है। सिन्हा ने भी जाति व जनजाति को सतत् सेतु के रूप में ही देखा है।

अभ्यास प्रश्न

(EXERCISE QUESTIONS)

□ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. जनजाति की अवधारणा स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए। (Explain the concept of Tribe and describe its characteristics.)
2. जाति एवं जनजाति में अन्तर स्पष्ट कीजिए। (Explain the difference between Caste and Tribe.)

जनजातियों का वर्गीकरण—भौगोलिक, खानाबदोश, कृषक और कारीगर

2

[CLASSIFICATION OF TRIBAL PEOPLE : GEOGRAPHICAL, NOMADS, AGRICULTURALISTS AND ARTISANS]

जनजाति समाज भारतीय समाज एवं संस्कृति का अभिन्न अंग है जनजाति समाज के अध्ययन हेतु जनजाति समाज का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया गया है। अर्थव्यवस्था को जनजाति समाज के वर्गीकरण का प्रमुख आधार माना जाता है। भोजन, वस्त्र, आवास यह मनुष्य की तीन मूलभूत आवश्यकता है जिसे प्रसिद्ध समाजशास्त्री कार्ल मार्क्स ने विशेष एवं अनिवार्य भौतिक मूल्य कहा है। मानव समाज की निरन्तरता के लिए इन भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति अनिवार्य है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति से ही कालान्तर में अर्थव्यवस्था का समाज में आविर्भाव हुआ है। उत्पादन, उपभोग, विनिमय, मानव श्रम एवं सहयोग इन सभी के परस्पर समन्वय एवं संकुल से ही अर्थव्यवस्था की निरन्तरता बनी हुई है।

प्राचीन अर्थव्यवस्था में मानव समाज में सामूहिक उत्पादन एवं वस्तु विनिमय प्रथा का चलन रहा। कालान्तर में मुद्रा अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ। अर्थव्यवस्था के आधार पर जनजाति वर्गीकरण को समझने के पूर्व अर्थव्यवस्था को समझना आवश्यक है।

जनजाति अर्थव्यवस्था की मुख्य धुरी प्राकृतिक पर्यावरण है तथा उनकी अर्थव्यवस्था के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि ये निर्वाह अर्थव्यवस्था का पालन करते हैं जिससे प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण हो एवं जनजातीय समाज की उदर पूर्ति भी हो सके। इनके लिए प्रकृति न केवल अर्थव्यवस्था का आधार स्तम्भ है बल्कि उनके सामाजिक धार्मिक आस्था का केन्द्र भी है।

जनजाति अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. तकनीकी ज्ञान का निम्न स्तर,
2. यातायात के सीमित साधन,
3. सम्पौषी अर्थव्यवस्था,
4. वस्तु विनिमय की प्रथा,
5. मुद्रा एवं बाजार व्यवस्था एवं प्रतिस्पर्धा का अभाव,
6. आर्थिक एवं सामाजिक सम्बन्ध एक-दूसरे से जुड़े हुए,
7. व्यक्तिगत एवं सामूहिक सम्पत्ति,
8. विशेषज्ञता का अभाव,
9. नवीन तकनीकी प्रौद्योगिकी एवं नवाचार का अभाव,
10. उत्पादन एवं वितरण की अपेक्षा विनिमय पर कम बल,
11. उपहार का विशेष महत्व।

जनजातीय लोगों का वर्गीकरण समझने के लिए यहाँ जनजातीय अर्थव्यवस्था पर विचार करना जरूरी है। मनुष्य अपने शारीरिक अस्तित्व को बनाये रखने हेतु तीन आधारभूत आवश्यकताओं को जुटाने का प्रयास करता है, जिन्हें कार्ल मार्क्स जीवन के विशेष व अनिवार्य भौतिक मूल्य कहते हैं। ये आवश्यकताएँ भोजन, वस्त्र और आवास हैं। इन्हें प्राप्त किये बिना मनुष्य का जीवित रहना मुश्किल हो

जायेगा और उसका सामाजिक जीवन भी खतरे में पड़ जायेगा। इन आवश्यकताओं को पूरा करते समय उसके द्वारा किये जाने वाले कार्य अर्थव्यवस्था को जन्म देते हैं। वह उत्पादन करता है तथा उत्पादित वस्तु का उपभोग भी करता है, लेकिन उत्पादन का कार्य हमेशा अकेला व्यक्ति ही नहीं करता, अपितु इसका अन्य लोगों के सहयोग की जरूरत भी होती है। उत्पादन में हिस्सा लेने वालों में भी उत्पादित वस्तु अथवा श्रम के मूल्य का वितरण करना पड़ता है। समस्त वस्तुओं का उत्पादन भी एक अथवा कुछ व्यक्तियों द्वारा नहीं होता।

अतएव वह अपने द्वारा उत्पादित वस्तु दूसरे व्यक्तियों को देकर उसके बदले में दूसरी वस्तु लेता है, तो विनिमय शुरू होता है। इस तरह उत्पादन, उपभोग, विनिमय और वितरण मिलकर मनुष्य के आर्थिक जीवन को क्रियाशील बनाते हैं तथा एक अर्थव्यवस्था को जन्म देते हैं।

बोहनन के शब्दों में, "सामाजिक समूहों तथा मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने हेतु स्रोतों, प्रविधि तथा कार्य को संगठित करने का जो ढंग है, उसे ही हम एक अर्थव्यवस्था कह सकते हैं।"

पिडिंगटन के शब्दों में, "आर्थिक प्रणाली लोगों की भौतिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु उत्पादन की व्यवस्था, वितरण पर नियन्त्रण एवं समुदाय में स्वामित्व के अधिकारों व दावों को निर्धारित करती है।"

मजूमदार एवं मदान के शब्दों में, "जीवन की दिन-प्रतिदिन की अधिक-से-अधिक आवश्यकताओं को न्यूनतम परिश्रम से पूर्ण करने के लिए मानव सम्बन्धों और प्रयत्नों को नियमित तथा संगठित करना ही अर्थव्यवस्था है।"

बील्स एवं हॉईजर के शब्दों में, "आर्थिक संगठन व्यवहारों के प्रतिमान हैं और समाज का वह संगठन है जोकि वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन, वितरण और उपभोग से सम्बन्धित है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य को जीवित रहने के लिए अपनी विविध आवश्यकताओं को सम्पन्न करना पड़ता है। इसके लिए उसे कुछ प्रयास करने पड़ते हैं। प्रयास के समय वह विभिन्न साधनों का प्रयोग करता है; जैसे—यह प्राकृतिक पर्यावरण और संस्कृति दोनों के द्वारा निर्धारित होते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में नीलगिरि की पहाड़ियों पर रहने वाले टोडा भैंस पालन करते हैं, तो कोटा बांस तथा बेंत की वस्तुएँ बनाकर जीवन-यापन करते हैं।

मनुष्य अपनी विविध आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्यावरण का दोहन करता है तथा दोहन के साधन उसे अपनी संस्कृति से ही मिलते हैं। इस तरह पर्यावरण और संस्कृति की अन्तःक्रिया ही आर्थिक संगठन को उत्पन्न करती है। आज मनुष्य ने अद्वितीय वैज्ञानिक उन्नति की है और भौगोलिक पर्यावरण की सीमा को पार किया है। आज वह एक ही पर्यावरण में विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं तथा व्यवसायों का एक साथ विकास कर रहा है, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जनजातीय अर्थव्यवस्था का प्रकृति से आज भी गहरा सम्बन्ध है।

जनजातीय समाजों में आर्थिक क्रियाएँ मुख्यतः शारीरिक अस्तित्व को बनाये रखने हेतु ही की जाती हैं। इसलिए उनकी अर्थव्यवस्था को 'निर्वाह अर्थव्यवस्था' कह सकते हैं। उनकी मुख्य समस्या उद्भरण व जीवित रहने की है। इसके लिए उन्हें प्रकृति से संघर्ष करते रहना होता है। हमारी तरह उनमें उत्पादन और उपभोग करने वाले अलग-अलग समूह नहीं हैं। वहाँ परिवार ही उत्पादन तथा उपयोग करने वाली इकाई है। अर्थव्यवस्था का मूल आधार परिवार ही है। आधुनिक अर्थव्यवस्था की भाँति उनमें नियोजित अर्थव्यवस्था नहीं होती है। जनजातीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. जनजातियों का तकनीकी ज्ञान तथा स्तर काफी निम्न है। अनुकूल जलवायु, वनस्पति और उनका सीमित लाभ ही प्राप्त कर सकते हैं। वे अपना उत्पादन खुरपी, कुदाल, गेंती, न्यूनतम आवश्यकताएँ भी बहुत ही मुश्किल से पूर्ण कर पाते हैं। प्रतिदिन अथवा मौसम के

समय खाद्य-संग्रह में लगे रहना, ज्यादातर समय कठिनाई का सामना करना तथा भूख के खतरे का बना रहना इत्यादि जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ हैं।

2. यातायात के साधनों की कमी के कारण अनाज व वस्तुओं के संग्रह में और एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान ले जाने में बहुत ही कठिनाई होती है। अतएव इनकी आर्थिक क्रियाएँ एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक ही सीमित रहती हैं तथा एक लघु क्षेत्र से बाहर इनके आर्थिक ढाँचे का विस्तार नहीं हो पाता।
3. आदिम जनजाति के लोग भविष्य के लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखते हैं। अगर वे कुछ संग्रहित करते भी हैं तो उसे बहुत अधिक समय तक सुरक्षित रखना नहीं जानते। उत्तरी रोडेशिया की बेम्बा जाति फल व अनाज संग्रहित कर लेती है, किन्तु गर्मी, नमी तथा दीमक उसे नष्ट कर देते हैं।
4. आदिम लोगों में आधुनिक समाजों की भाँति मुद्रा तथा बाजार की व्यवस्था नहीं है और न ही बैंक व साख इत्यादि की सुविधाएँ हैं। अधिकतम उनका विनिमय वस्तु विनिमय के रूप में ही प्रचलित है। इसलिए उनमें, व्यापारी, दलाल, प्रतियोगिता एवं एकाधिकार की कमी होती है।
5. आदिम लोगों में हर दिन आविष्कार, नवाचार तथा परिवर्तन कम ही होते हैं। इसलिए वहाँ स्थिरता ज्यादा है। इस स्थिरता व समरूपता के कारण ही आर्थिक उत्पादन की प्रविधि में सामान्य रूप से कोई परिवर्तन नहीं हो पाते।
6. आर्थिक एवं सामाजिक सम्बन्धों में कोई अन्तर नहीं होता है। उनमें मालिक और नौकर के सम्बन्ध नहीं होते हैं। उनकी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्रियाएँ त्योहारों व उत्सवों में मिली-जुली रहती हैं।
7. हमें इन लोगों में व्यक्तिगत व सामूहिक दोनों तरह की सम्पत्ति देखने को मिलती है। तीर-धनुष, नाव एवं कृषि के उपकरण व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं तथा नदी, तालाब, कृषि-भूमि चरागाह व शिकार का क्षेत्र सामूहिक सम्पत्ति हैं। परिवार ही उत्पादन करने वाली मूलभूत इकाई है। आर्थिक क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य जीवन-यापन के साथ-साथ सामूहिक दायित्वों को भी निभाना है।
8. आदिम लोगों में हमारी तरह विशेषज्ञ नहीं होते और न ही विशेषीकरण होता है। वहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति थोड़ा-बहुत सभी तरह का कार्य जानता है। इसलि जनजातीय लोगों को हरफनमौला माना जा सकता है।
9. आदिम समाजों में उत्पादन और वितरण की अपेक्षा विनिमय पर कम बल दिया जाता है, क्योंकि सामूहिक रूप से जो कुछ भी उत्पादन किया जाता है, उसका एक समान वितरण कर दिया जाता है, इत्रमें बिक्री के लिए उत्पादन नहीं किया जाता है। बचत कम हो पाती है, इसलिए विनिमय भी कम ही होता है। उत्पादन भी केवल दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए ही किया जाता है।
10. आदिम अर्थव्यवस्था में उपहार का विशेष महत्व होता है। यह विनिमय का एक साधन है। एक व्यक्ति के पास जब कोई वस्तु अधिक होती है, तो वह दूसरों को उपहार देता है। उपहार लेने वाले की भी यह जिम्मेदारी होती है कि वह बदले में कुछ उपहार दे। आदिम आर्थिक जीवन में अतिथि सत्कार का विशेष स्थान है।

I. जनजातियों का भौगोलिक वितरण

(GEOGRAPHICAL DISTRIBUTION OF TRIBES)

डॉ. बी. एस. गुहा ने भारत की समस्त जनजातियों को भौगोलिक निवास के आधार पर तीन भागों में विभाजित किया है—

1. उत्तर एवं उत्तर-पूर्वी क्षेत्र (North and North-Eastern Zone)—डॉ. गुहा के अनुसार, इस क्षेत्र का विस्तार कश्मीर, पूर्वी पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तरी उत्तर प्रदेश तथा असम के पहाड़ी भाग तक है। इसके अन्तर्गत लेह, शिमला एवं लुशाई पर्वत का क्षेत्र भी आता है। यह सभी क्षेत्र सीमावर्ती

IV. उद्योगों में लगी जनजातियाँ

(TRIBES ENGAGED IN INDUSTRIES)

औद्योगीकरण और मशीनीकरण ने समाज के कई वर्गों को प्रभावित किया है। इनके प्रभावों से जनजातीय समुदाय भी मुक्त नहीं रहे और आज कई जनजातियाँ अपना जीवन-यापन नौकरी करके अथवा उद्योगों में श्रमिकों के रूप में काम करके कर रही हैं। इनमें से कई लोग जंगलों और गाँवों को छोड़कर शहरों में रहने लगे हैं। कई जनजातीय लोग असम और दार्जिलिंग के चाय बागानों में कार्यरत हैं, कई जनजातियाँ मध्य प्रदेश के मैंगनीज उद्योग में कार्यरत हैं। कई संथाल, हो एवं अन्य जनजातीय लोग जमशेदपुर में लोहे के कारखाने व रानीगंज और झरिया की कोयला खानों में कार्य कर रहे हैं।

V. कारीगर

(ARTISANS)

विभिन्न जनजातियाँ हस्तशिल्प उद्योग और दस्तकारी द्वारा जीवन-निर्वाह करती हैं। वे छोटे-छोटे वस्त्र, चटाई, रस्सी, टोकरी, बर्तन और धातुओं की वस्तुएँ बनाने का कार्य करती हैं। गोंड लोग धातुओं की वस्तुएँ बनाते हैं, कपड़ा बुनते हैं, बेंत का सामान और मिट्टी के बर्तन बनाते हैं। कोरवा और अगरिया भी धातु के बर्तन बनाते हैं। बिरहोर लोग जंगल की लताओं से सुन्दर-सुन्दर रस्सियाँ बनाते हैं। घासी मृत जानवरों से तांत बनाते हैं। इरूला बांस की टोकरियाँ व चटाइयाँ बनाते हैं। बैगा, कमार और चैचू बांस के बर्तन बनाते हैं। थारू लोग खेती के साथ-साथ बर्तन, टोकरियाँ, रस्सी, चटाई एवं वाद्य-यन्त्र इत्यादि बनाने का काम करते हैं। बहुत-सी कृषि करने वाली जनजातियाँ खाली समय में दस्तकारी का काम करती हैं।

अभ्यास प्रश्न

(EXERCISE QUESTIONS)

□ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Type Questions)

1. भारत में जनजातियों के भौगोलिक विवरण का वर्णन कीजिए। (Describe the geographical distribution of Tribes in India.)
2. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए (Write a comment on the following):
(अ) खानाबदोश (Nomads) (ब) कृषक (Agriculturalists)
(स) कारीगर (Artisans)

□ लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जनजातीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ बताइए। (Explain the characteristics of Tribal Economy.)
2. जनजातियों का भौगोलिक वितरण बताइए। (Explain the geographical distribution of the Tribes.)

□ वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. किसने कहा है कि "आर्थिक प्रणाली लोगों की भौतिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए, उत्पादन की व्यवस्था, वितरण पर नियन्त्रण एवं समुदाय में स्वामित्व के अधिकारों व दावों को निर्धारित करती है।"
(अ) बोहन्नन (ब) पिडिंगटन
(स) मजूमदार एवं मदान (द) मैकाइवर
2. डॉ. बी. एस. गुहा ने भारत की समस्त जनजातियों को भौगोलिक आधार पर कितने भागों में विभाजित किया है?
(अ) दो (ब) तीन (स) चार (द) पाँच
3. समाज के विभिन्न वर्गों को किसने प्रभावित किया है?
(अ) औद्योगीकरण (ब) मशीनीकरण
(स) 'अ' एवं 'ब' दोनों (द) इनमें से कोई नहीं
4. बांस के बर्तन कौन-सी जनजाति बनाती है?
(अ) बैगा (ब) कमार (स) चैचू (द) इनमें से कोई नहीं

परिवार समाज की एक मूलभूत इकाई है, जो मनुष्य के विकास के समस्त स्तरों पर पायी जाती रही है। परिवार एक सामाजिक संस्था और समूह के रूप में कई प्रकार्य करता है।

परिवार—अर्थ एवं परिभाषाएँ

(FAMILY : MEANING AND DEFINITIONS)

शाब्दिक अर्थों में 'परिवार' या 'Family' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द 'Famulus' से हुई है। 'Famulus' का अर्थ 'सेवक या सेवा करने वाला' होता है। इस दृष्टिकोण से परिवार को उन व्यक्तियों का सबसे छोटा समूह या वर्ग कह सकते हैं, जो रक्त-सम्बन्धों एवं सेवा की भावना के माध्यम से परस्पर सम्बन्धित होते हैं।

✓ लूसी मेयर के अनुसार, "परिवार एक गृहस्थ समूह है, जिसमें माता-पिता एवं सन्तान साथ रहते हैं। इसके मूल रूप में दम्पति एवं सन्तान रहती हैं।"

✓ मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, "परिवार पर्याप्त निश्चित यौन सम्बन्ध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है, जो बच्चों के जनन एवं लालन-पालन की व्यवस्था करता है।"

दुबे के अनुसार, "परिवार में स्त्री एवं पुरुष दोनों को सदस्यता मिली रहती है, उनमें से कम-से-कम दो विपरीत यौन व्यक्तियों को यौन सम्बन्धों की सामाजिक स्वीकृति रहती है और उनके संसर्ग से उत्पन्न सन्तानें मिलकर परिवार का निर्माण करती हैं। इस तरह प्राथमिक अथवा मूल परिवार के लिए माता-पिता व उनकी सन्तति का होना आवश्यक है।"

डब्ल्यू. एच. आर. रिवर्स के अनुसार, "परिवार-शब्द से हमारा तात्पर्य एक छोटे-से सामाजिक समूह से होता है, जिसमें माता-पिता और बच्चे शामिल हों।"

परिवार की भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि परिवार का निर्माण करने के लिए दो विषमलिंगियों का होना जरूरी है, जिन्हें यौन सम्बन्ध स्थापित करने की समाज की स्वीकृति मिली हो। अन्य शब्दों में, परिवार के लिए पति-पत्नी का होना महत्वपूर्ण है, किन्तु केवल पति-पत्नी से ही परिवार का निर्माण पूरा ही नहीं हो जाता, अपितु इसमें उनके द्वारा उत्पन्न हुए बच्चे शामिल हैं। इस विषय में गृहस्थी एवं परिवार की भिन्नता भी महत्वपूर्ण है। परिवार में स्त्री-पुरुष व उनके बच्चों का होना जरूरी है, जबकि गृहस्थी में केवल पति-पत्नी अथवा पति और बच्चे अथवा अन्य रिश्तेदार भी शामिल हो सकते हैं। गृहस्थ का उद्देश्य मनुष्य की विविध आवश्यकताओं को पूरा करना होता है; जैसे—भोजन, वस्त्र एवं आवास। एक गृहस्थ श्रम विभाजन के द्वारा अपने सदस्यों की भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताएँ पूर्ण करता है। गृहस्थ अपने सदस्यों का लालन-पालन करता है, उन्हें शिक्षा प्रदान करता है, उनका समाजीकरण करता है तथा उन्हें संस्कृति सिखाता है।

परिवार की विशेषताएँ

(CHARACTERISTICS OF FAMILY)

मैकाइवर एवं पेज ने परिवार की सामान्य विशेषताओं का निम्नवत् वर्णन किया है, जो समस्त समाजों में और समस्त स्थानों में पाये जाने वाले परिवारों में देखने को मिलती है।

1. विवाह सम्बन्ध (Marriage Relationship)—विवाह के कारण ही परिवार की पहचान होती है। विवाह के द्वारा ही स्त्री और पुरुष को यौन सम्बन्ध बनाने की सामाजिक स्वीकृति मिलती है,

जिसके परिणामतः सन्तानें जन्म लेती हैं। माता-पिता और सन्तान तीनों मिलकर ही एक परिवार का सृजन करते हैं। विवाह सम्बन्ध तो जीवन-भर बना रहता है, किन्तु दोनों में से किसी पक्ष के मर जाने अथवा तलाक देने पर यह सम्बन्ध समाप्त हो जाता है।

2. विवाह का स्वरूप (Form of Marriage)—विवाह ही दो विषमलिंगियों को यौन सम्बन्धों को बनाने और उन्हें स्थाई बनाये रखने की समाज द्वारा स्वीकृत संस्थात्मक व्यवस्था है। इस विवाह के विभिन्न रूप समाज में प्रचलित हो सकते हैं। एक समय में एक स्त्री और एक पुरुष के वैवाहिक बन्धन को एक विवाह के नाम से जानते हैं। आज सभ्य समाजों तथा खासी, संथाल तथा कदार जनजातियों में यह विवाह प्रणाली प्रचलित है। यदि एक समय में एक पुरुष की एक से अधिक पत्नियाँ हों, तो उसे बहुपत्नी प्रथा कहा जाता है। यह प्रथा विभिन्न जनजातियों में देखने को मिलती है, जैसे—गोंड एवं बैगा। यदि एक स्त्री के एक-से अधिक पति हों तो उसे बहुपति प्रथा कहा जाता है। यह विवाह प्रथा भारत में टोडा एवं खस राजपूतों में प्रचलित है। कभी-कभी ऐसा भी देखने को मिलता है कि लड़कों का एक समूह लड़कियों के एक समूह से विवाह करता है। इसे समूह विवाह कहा जाता है। कुछ समय पहले नागाओं तथा ऑस्ट्रेलिया की कुछ जनजातियों में इस विवाह प्रथा का प्रचलन था।

3. आर्थिक प्रबन्ध (Economic Management)—परिवार के सभी सदस्यों का भरण-पोषण करने और उनके अस्तित्व को बनाये रखने हेतु किसी-न-किसी तरह की अर्थव्यवस्था सभी परिवारों में पायी जाती है। सदस्यों का भरण-पोषण अर्थव्यवस्था के द्वारा ही होता है।

4. वंशनाम की व्यवस्था (System of Nomenclature)—समस्त परिवारों के बच्चों का वंश के आधार पर नामकरण करवाने का अधिकार होता है। उसी के नाम से परिवार के बच्चों को पहचाना जाता है। इसे उपनाम अथवा वंशनाम कहा जाता है। यह नामकरण पितृवंशीय परिवारों में पिता के वंश के आधार पर होता है जबकि मातृवंशीय परिवारों में यह माता के वंश के आधार पर होता है। भारत में हिन्दुओं, भील, कंजर, मीणा, संथाल, हो और कई जनजातियों में यह नामकरण पितृवंशीय आधार पर होता है। खासी, गारो एवं नायर इत्यादि परिवारों में बच्चों का नामकरण मातृवंशीय आधार पर होता है।

5. साधारण आवास (General Habitat)—सामान्यतः परिवार का एक निश्चित निवास या घर होता है। विवाह के पश्चात् जब पति-पत्नी, पति के पिता अर्थात् पितृवंशजों के यहाँ पर रहते हैं, तो उसे पितृवंशीय परिवार या पितृस्थानीय परिवार कहते हैं। यह व्यवस्था खासी, गारो, नायर इत्यादि जनजातियों में देखने को मिलती है किन्तु जब विवाह के पश्चात् नवविवाहित दम्पति न तो मातृपक्ष के साथ रहते हैं और न ही पितृपक्ष के साथ रहते हैं, तो उसे नवस्थानीय परिवार कहते हैं। इन उपर्युक्त सार्वभौमिक विशेषताओं के अलावा मैकाइवर एवं पेज ने कुछ ऐसी विशेषताओं की भी विवेचना की है, जो अन्य समितियों में देखने को नहीं मिलती है। वे निम्नलिखित हैं—

(i) **सार्वभौमिकता (Universality)**—परिवार की उपस्थिति सार्वभौमिक होती है। कोई भी समाज हो चाहे वह आधुनिक हो अथवा प्राचीन, नगरीय हो अथवा ग्रामीण, सभी में परिवार देखने को मिलेगा। हर एक मनुष्य किसी-न-किसी परिवार का सदस्य रहा है और भविष्य में भी रहेगा। सामाजिक विकास के समस्त स्तरों पर परिवार देखने को मिलते हैं। कई पशुओं तक में परिवार पाये जाते हैं तो फिर मनुष्य जैसे विकसित प्राणी में परिवार का अभाव कैसे देखने को मिल सकता है।

(ii) **सीमित आकार (Limited Size)**—अन्य बड़े समूहों की भाँति परिवार की सदस्य संख्या तीन सौ से अधिक नहीं हो सकती। इसका एक कारण प्राणीशास्त्रीय है। पुरानी पीढ़ी वृद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त होती जाती है, इसलिए नई पीढ़ी के आने पर भी सदस्यों की संख्या एक निश्चित सीमा तक ही बनी रहती है। परिवार का आकार सदस्यों के विभाजन के कारण भी छोटा बना रहता है। कभी-कभी परिवार में जन्म लेने के अलावा गोद लेने से भी इसकी सदस्यता ग्रहण की जाती है।

(iii) **भावनात्मक आधार (Emotional Basis)**—परिवार के सभी सदस्य भावनात्मक बन्धनों से बँधे होते हैं। माता-पिता और बच्चों के मध्य त्याग व वात्सल्य की भावना होती है। पति-पत्नी के

प्रभु गहरा प्रेम होता है। परिवार में प्रेम, सहयोग, दया, त्याग, बलिदान इत्यादि की भावनाएँ विद्यमान होती हैं, जो पारिवारिक संगठन को सुदृढ़ बनाती हैं।

(iv) सामाजिक संरचना में केन्द्रीय स्थिति (Nuclear Position in the Social Structure)—परिवार की सामाजिक संरचना में केन्द्रीय स्थिति होती है तथा समाज का निर्माण भी परिवार-रूपी इकाइयों के मिलने से होता है। अरस्तू ने समुदाय को परिवारों का योग कहा है। जनजातीय समाजों में तो बहुत-से ऐसे संगठन हैं, जिनकी सदस्यता परिवार के आधार पर ही अर्जित की जाती है; जैसे—गोत्र, भ्रातृदल एवं वंश।

(v) सामाजिक नियन्त्रण (Social Control)—परिवार पर समाज का नियन्त्रण बना रहता है। कई ऐसे नियम, प्रथाएँ और रूढ़ियाँ हैं, जो परिवार को बनाये रखने और उस पर नियन्त्रण रखने में सहयोग देती हैं। कोई भी व्यक्ति न तो मनमाने तरीके से विवाह कर सकता है और न ही परिवार का सृजन कर सकता है, अपितु उसे इसके लिए सामाजिक नियमों तथा कानूनों का पालन करना होता है। भारत देश में विवाह और परिवार सम्बन्धी कई कानून बन चुके हैं। 1954 का विशेष विवाह अधिनियम व 1955 का हिन्दू विवाह अधिनियम, विवाह व परिवार का नियमन करते हैं।

(vi) रचनात्मक प्रभाव (Formative Influence)—मनुष्य जन्म लेने के पश्चात् सबसे पहले परिवार के सम्पर्क में आता है। शिशु पर परिवार के सदस्यों का गहरा प्रभाव पड़ता है। परिवार व्यक्ति के व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण में विशेष भूमिका अदा करता है। उसके व्यवहार, मनोवृत्ति और आदतों पर परिवार की ही गहरी छाप होती है। इसलिए ही कूले परिवार को मानव स्वभाव की पोषिका कहा जाता है। परिवार का स्थान समय तथा महत्व की दृष्टि से भी अन्य समितियों की तुलना में उच्च है। कुछ विद्वान् लोग इसे शिशु की प्रथम पाठशाला कहते हैं, क्योंकि सबसे पहले बच्चे को शिक्षा परिवार से ही मिलती है। अन्य शिक्षण संस्थाओं के सम्पर्क में तो वह बाद में जाता है।

(vii) सदस्यों की जिम्मेदारी (Responsibility of the Members)—प्रत्येक परिवार अपने सदस्यों से कुछ जिम्मेदारियों को निभाने की अपेक्षा रखता है। विपत्ति के समय व्यक्ति अपने समाज और देश के लिए त्याग करता है, लेकिन परिवार के लिए तो वह हमेशा ही कुछ-न-कुछ करता ही रहता है। परिवार के लिए वह बड़े-से-बड़ा त्याग करने को तत्पर रहता है। परिवार के सदस्य हमेशा एक-दूसरे के हित और सुख-सुविधा के बारे में सोचते हैं। माता-पिता खुद कष्ट सहकर बच्चों को सुखी देखना चाहते हैं। सदस्यों की इस भावना के कारण ही परिवार का संगठन स्थाई बना रहता है।

(viii) स्थायी एवं अस्थायी प्रकृति (Permanent and Temporary Nature)—परिवार एक समिति के रूप में स्थायी भी है और अस्थायी भी है। परिवार की सदस्यता, सदस्यों की मृत्यु, पृथक्करण, तलाक इत्यादि से त्यागी जा सकती है, किन्तु एक संस्था के रूप में परिवार अमर है। संस्था रूप में परिवार के नियम तथा कार्य प्रणाली आते हैं, जो परिवार को स्थायित्व देते हैं, इसलिए ही आदिकाल से अभी तक परिवार किसी-न-किसी रूप में बना हुआ है।

परिवार के प्रकार

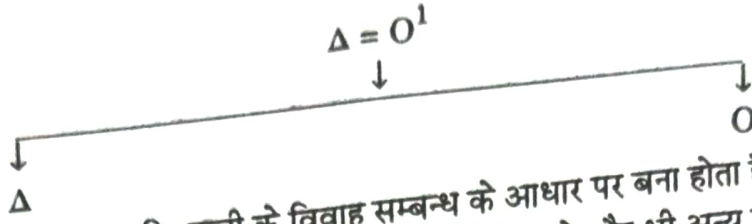
(TYPES OF FAMILY)

जनजातीय समाजों में परिवार के अलग-अलग रूप देखने को मिलते हैं, जोकि वहाँ की भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है। परिवारों को कई प्रकारों में विभाजित किया गया है।

I. सदस्यों की संख्या के आधार पर परिवार (Families based on Number of Members)

1. मूल परिवार, नाभिक परिवार, केन्द्रीय परिवार अथवा दाम्पत्य मूलक परिवार (Primary, Nuclear or Conjugal Family)—यह परिवार का सबसे लघु रूप होता है, जो एक पुरुष, एक स्त्री और कई आश्रित बच्चों से मिलकर बना होता है। इसमें अन्य रिश्तेदारों को शामिल नहीं किया जाता है, यहाँ तक कि बच्चे भी अविवाहित होने तक ही इसके सदस्य होते हैं। आज औद्योगिक नगरीय समुदायों

में ऐसे परिवारों की संख्या बढ़ती जा रही है। ऐसे परिवार को निम्नलिखित चित्र द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है—



दाम्पत्य मूलक परिवार पति-पत्नी के विवाह सम्बन्ध के आधार पर बना होता है। मानवशास्त्री ऐसे परिवार को नातेदारी तन्त्र की मुख्य सार्वभौमिक इकाई मानते हैं। इसे और भी अन्य कई नामों से पुकारते हैं; जैसे—वैयक्तिक परिवार, परमाण्विक परिवार।

2. संयुक्त परिवार (Joint Family)—एक संयुक्त परिवार में तीन अथवा तीन से अधिक पीढ़ियों के सदस्य एक ही साथ एक ही घर में रहते हैं, उनकी सम्पत्ति भी सामूहिक होती है, वे एक ही रसोई में बना हुआ भोजन करते हैं, सामूहिक पूजा में हिस्सा लेते हैं और एक-दूसरे से किसी-न-किसी नातेदारी व्यवस्था से सम्बन्धित होते हैं। संयुक्त परिवार के सदस्य एक-दूसरे के प्रति अधिकारों और जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हैं।

दुबे कहते हैं, “यदि कई मूल परिवार एक साथ रहते हों और उनमें निकट का नाता हो, एक स्थान पर भोजन करते हों और एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हों तो उन्हें उनके सम्मिलित रूप में संयुक्त परिवार कहा जा सकता है।” एक संयुक्त परिवार में दादा-दादी, माता-पिता, चाचा-चाची, चचेरे भाई और उनकी पत्नियाँ, बच्चे, विधवा बहनें और बेटियाँ होती हैं। हिन्दुओं में विशेष रूप से ग्रामों में संयुक्त परिवार का अधिक प्रचलन है। जे. डी. मेन ने अपनी पुस्तक **हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम** में मालाबार के नायरो में प्रचलित संयुक्त परिवार को इस व्यवस्था का एक पूर्ण उदाहरण माना है, जिसे ‘मारवाड़’ कहा जाता है।

3. विस्तृत परिवार (Extended Family)—ऐसे परिवार में सभी रक्त सम्बन्धी और अन्य सम्बन्धी भी शामिल होते हैं। ये एक-पक्षीय अथवा द्वि-पक्षीय भी हो सकते हैं। ऐसे परिवारों में सम्बन्ध और रिश्तेदारी का भी उचित ज्ञान नहीं हो पाता। ऐसे परिवारों के सदस्यों की संख्या बहुत ज्यादा होती है। इन सभी सदस्यों का निवास स्थान और कार्य एक ही होता है तथा वे परिवार के मुखिया को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

दुबे के शब्दों में, “विस्तारित परिवार की संज्ञा उस परिवार संकुल को दी जाती है जो वंशानुक्रम से सम्बद्ध होते हुए भी अपनी अलग-अलग इकाइयों के रूप में परिवारों में बँटा हुआ हो।”

II. अधिकार के आधार पर (On the basis of Authority)

परिवार में माता-पिता में से किसकी सत्ता चलती है या किसे अधिकार मिला है, इस आधार पर परिवारों को दो भागों में विभक्त किया गया है—

1. पितृसत्तात्मक परिवार (Patriarchal Family)—पितृसत्तात्मक परिवारों में सत्ता और अधिकार पिता तथा पुरुषों के हाथ में होते हैं, वे ही परिवार का नियन्त्रण करते हैं।

2. मातृसत्तात्मक परिवार (Matriarchal Family)—ऐसे परिवारों में पितृसत्तात्मक के विपरीत माता या स्त्री में ही अधिकार और सत्ता समाहित होती है, वही पारिवारिक नियन्त्रण बनाये रखने का कार्य करती है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि कोई पुरुष भी उसकी तरफ से यह कार्य कर सकता है। कहीं पर स्त्रियों को ये अधिकार वास्तविक हैं, तो कहीं पर नाममात्र के हैं।

मैकाइवर एवं पेज ने मातृसत्तात्मक और मातृवंशीय परिवारों की निम्नांकित विशेषताएँ बताई हैं—

(i) मातृसत्तात्मक परिवारों में बच्चों का वंश परिचय और वंश नाम माता के परिवार के आधार पर निर्धारित होता है। इस प्रकार सन्तानें पिता के कुल अथवा वंश के स्थान पर माता के वंश की मानी जाती हैं।

- (ii) विवाह के पश्चात् पति ही पत्नी के घर जाकर रहता है तथा उसके परिवार का सदस्य बन जाता है।
- (iii) ऐसे परिवारों में पुत्र को पिता से कोई सम्पत्ति प्राप्त नहीं होती है। सम्पत्ति के अधिकार मातृ पक्ष से ही निर्धारित होते हैं, किन्तु सम्पत्ति में पुत्र और पुत्री सभी का समान अधिकार होता है।
- (iv) सम्पत्ति और पद का उत्तराधिकार मामा से भानजों को मिलता है। द्रावणकौर एवं कौचीन में राजा का उत्तराधिकारी राजा का पुत्र न होकर उसका भानजा ही होता है।
- (v) मातृसत्ता का यह आशय नहीं कि केवल स्त्री को ही सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक अधिकार मिलते हैं तथा पुरुषों को इन सभी अधिकारों से वंचित रखा जाता है, अपितु पुरुषोंचित्त कार्य पुरुषों को ही दिये जाते हैं। मातृसत्तात्मक परिवारों के कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नवत् प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(a) **खासी जनजाति (Khasi Janjati)**—यह जनजाति आसाम में रहती है। यहाँ पर मातृस्थानिक व मातृवंशीय स्वरूप अधिक देखने को मिलता है। पारिवारिक धर्म, सामान्य समाधि में भाग लेना ऐसे कार्य हैं, जो सदस्यों को एक सूत्र में बाँधकर रखते हैं, जहाँ परिवार के सदस्यों की अस्थियों को मृत्यु के पश्चात् रखा जाता है। अन्य मातृसत्तात्मक परिवारों की भाँति स्त्रियों की सन्तानें ही परिवार की सदस्य होती हैं तथा सम्पत्ति को भी स्त्रियों में ही हस्तान्तरित किया जाता है। पुरुष के द्वारा अर्जित धन उसके इंग मानी परिवार की ही सम्पत्ति होती है, जोकि उसकी माता, बहिन या अन्य स्त्री वंशजों को ही प्राप्त होती है। परिवार में सबसे छोटी पुत्री का विशेष स्थान होता है, जिसे काखादुदु कहा जाता है। यही परिवार के धर्म की रक्षा करती है, माता का दाह-संस्कार करती है तथा अस्थियों को भी समाधि में रखती है। परिवार की सम्पत्ति का मुख्य भाग छोटी पुत्री को ही मिलता है। घर ही पारिवारिक उपासना का स्थान होता है, इसलिए कखदुदु उसकी संरक्षक होती है किन्तु वह सभी बहिनों की सहमति के बिना घर बेच नहीं सकती। जब तक वह परिवार की उपासना का काम करती है, तब तक परिवार की सम्पत्ति तथा घर उसके अधिकार में रहते हैं। धर्म परिवर्तन करने पर वह पारिवारिक धर्म की देखभाल का कार्य अपनी दूसरी बड़ी बहिन को सौंप देती है। इसी तरह घर की सबसे छोटी पुत्री ही परिवार की पुरोहित भी होती है। यदि उसके कोई सन्तान नहीं होती है, तो वह सम्पत्ति दूसरी बहिन को दे देती है और वही उसकी उत्तराधिकारी होती है। इस तरह से परिवार की सम्पत्ति अविभाज्य बनी रहती है। परिवार की जो अन्य स्त्रियाँ होती हैं, वे विवाह के पश्चात् गाँव में अपने घर बना लेती हैं और स्वयं द्वारा व पति के द्वारा कमाये हुए धन से गृहस्थी चलाती हैं। खासी जनजाति के लोगों में 'कुर' विशाल परिवार और गोत्र का सूचक है, लेकिन 'कुर' भूमि किराये पर ही दी जाती है, और उसकी आय को विवाहित पुत्रियों में विभाजित कर दिया जाता है। घर का जो सबसे बड़ा पुरुष होता है, वही इस सम्पत्ति की देख-रेख करता है। पारिवारिक और सामाजिक जीवन में स्त्रियों का अधिकाधिक महत्व होने की वजह से प्रत्येक खासी परिवार में कम-से-कम एक पुत्री के जन्म को महत्वपूर्ण अथवा जरूरी माना जाता है।

(b) **गारो जनजाति (Garro Janjati)**—यह जनजाति आसाम में निवास करती है और यह मातृसत्तात्मक व मातृवंशीय है। ये लोग अपनी उत्पत्ति अथवा जन्म को स्त्री पूर्वज से मानते हैं। वंशक्रम मातृपक्ष से ही तय होता है। विवाह के पश्चात् पति अपने घर न रहकर पत्नी के घर जाकर रहता है। यह जनजाति स्त्री प्रधान है, इसलिए यहाँ उत्तराधिकार पुरुषों को नहीं अपितु पुत्रियों को ही प्राप्त होता है। पिता अपनी इच्छा से किसी भी कन्या को उत्तराधिकारी बना सकता है किन्तु अधिकतर ऐसा होता है कि पिता की सबसे छोटी पुत्री को ही उत्तराधिकारी चुना जाता है। अगर किसी व्यक्ति के कन्या नहीं हो तो वह अपनी बहिन की पुत्री को गोद ले सकता है और उसे उत्तराधिकारी बनाया जाता है। उस कन्या का विवाह पिता की बहिन के लड़के के साथ होता है। उत्तराधिकारी को 'नाकूना' और उसके पति को 'गोक्रोम' कहा जाता है। अन्य पुत्रियों के पति को 'चोवारी' कहा जाता है। पति पत्नी की इच्छा के अनुसार घर की व्यवस्था चलाने में मदद करता है। परिवार की धार्मिक और जादुई गतिविधियों को सबसे छोटी पुत्री अथवा उत्तराधिकारी ही सम्पन्न करती है। इस जनजाति में ससुर की मृत्यु हो जाने पर

'नोक्रोम' अपनी विधवा सास से विवाह कर लेता है। यह विवाह केवल एक औपचारिकता है, क्योंकि दोनों की आयु में काफी अन्तर होता है। इस विवाह का मुख्य उद्देश्य सम्पत्ति को प्राप्त करना है। नोक्रोम यह विवाह नहीं करता है और सास किसी अन्य व्यक्ति से विवाह कर ले तो नोक्रोम दम्पति समस्त अधिकार छिन जाते हैं। किन्तु जब सास और दामाद की आयु में ज्यादा अन्तर नहीं होता है, ऐसी स्थिति में उनमें वास्तविक यौन सम्बन्ध भी हो सकते हैं और इस स्थिति में माता व पुत्री में के तथा वैमनस्य की भावना उत्पन्न होने के अवसर रहते हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर पुत्री विवाह-विधवा कर लेती है और पति को माँ के पास छोड़ देती है। नोक्रोम सामान्यतः एक ही विवाह करता है। कभी एक से ज्यादा पत्नियाँ रखना जरूरी होता है तो अन्य पत्नियों की स्थिति नोक्रोम से निम्न होती है। 'चोवारी' लोगों को गाँव में कुछ भूमि प्रदान कर दी जाती है, जहाँ पर वे अपना अलग मकान बनाकर रहने लगते हैं। नोक्रोम की मृत्यु हो जाने पर पत्नी दूसरा विवाह कर सकती है, किन्तु उसे कुछ नियम का पालन करना होता है; जैसे—उसे अपने पति के ही किसी अविवाहित भाई से विवाह करना पड़ता है। अगर सभी भाई विवाहित हैं, तो उसे पति के ही गोत्र के किसी अन्य सदस्य से विवाह करना होता है।

(c) नायर परिवार (Nayar Family)—मालाबार के नायरो में मातृसत्तात्मक परिवार होते हैं। इसकी प्रवृत्ति जब संयुक्त होती है, तो इसे मलयालम भाषा में 'थारवाड' या 'तारवाड' कहा जाता है और एकांकी परिवार को 'तावझी' कहा जाता है। एक नायर परिवार में एक स्त्री, उसके लड़के और लड़कियों के बच्चे रहते हैं। इस तरह नायर संयुक्त परिवार में एक स्त्री वंश की अनेक पीढ़ियों के लोग एक साथ रहते हैं। लड़कों की सन्तानें उनकी पत्नियों के परिवार (तारवाड) की सदस्य होती हैं और अपनी माँ के साथ रहती हैं। तारवाड में सभी रक्त सम्बन्धी ही रहते हैं, इसमें कोई भी विवाह सम्बन्ध नहीं रहता है। इसलिए इसे रक्त सम्बन्धी मातृसत्तात्मक परिवार कह सकते हैं। भाई अपनी बहिन के परिवार की देखरेख करता है। तारवाड की सम्पत्ति उसके समस्त सदस्यों की अविभाज्य सम्पत्ति होती है। परिवार का वयोवृद्ध पुरुष जिसे कि 'कार्णवान' कहा जाता है, वही सम्पत्ति का प्रबन्धक होता है। उसकी मृत्यु पर उसका छोटा भाई यह स्थान ग्रहण कर लेता है। भानजे को मामा से उत्तराधिकार मिलता है। इस तरह नायर जनजाति में उत्तराधिकार का क्रम टेढ़ा-मेढ़ा है। परिवार की सम्पत्ति का विभाजन सदस्यों की अनुमति से ही हो सकता है। फिर भी कोई भी सदस्य विभाजन के विरुद्ध आवाज उठाता उसी समय तक होते हैं जब तक वे संयुक्त रूप से रहते हैं, किन्तु दो परिस्थितियों में अलग रहने पर भी उन्हें भरण-पोषण का अधिकार प्राप्त हो जाता है—(i) कार्णवान की अनुमति मिल गयी हो, (ii) यह साबित हो जाये कि कार्णवान का व्यवहार अनुचित है। कार्णवान एक प्रबन्धक ही होता है, इसलिए उसे सम्पत्ति को बेचने अथवा गिरवी रखने का अधिकार नहीं होता है। अगर वह नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे इस पद से भी हटाया जा सकता है, किन्तु वास्तव में कार्णवान शक्तिशाली और निरंकुश होता है। आज के समय में नायर लोगों में तारवाड का विघटन हो रहा है तथा छोटे-छोटे परिवार जिन्हें हमेशा तारवाड कहते हैं, वे विकसित हो रहे हैं, जो नायर व्यवसाय अथवा नौकरी के लिए मूल स्थान छोड़कर बाहर नगरों में जाते हैं, उनके साथ अब उनकी पत्नियाँ तथा बच्चे भी जाने लगे हैं। इस प्रकार पिता क्वतः महत्व बढ़ता जा रहा है तथा पिता व सन्तानों के सम्बन्धों में नए परिवर्तन आ रहे हैं।

III. निवास के आधार पर (On the basis of Residence)

विवाह के पश्चात् दम्पति का निवास स्थान कहाँ हो, इस आधार पर भी परिवारों को विभाजित किया गया है, जो निम्न प्रकार हैं—

1. पितृस्थानीय परिवार (Patrilocal Family)—अगर विवाह के पश्चात् पत्नी अपने पति और उसके माता-पिता के साथ रहने लगती हो तो उसे पितृस्थानीय परिवार कहा जाता है। यह प्रथा हिन्दु और मुसलमानों व भील, खडिया और विभिन्न पितृवंशीय परिवारों में देखने को मिलती है।
2. मातृस्थानीय परिवार (Matrilocal Family)—इसके विपरीत जब विवाह के पश्चात् पति-पत्नी के साथ उसके माता-पिता के निवास स्थान पर रहने लगता है, तो उसे मातृस्थानीय परिवार

कहा जाता है। ऐसे परिवार भारत में मालाबार के नायर्स, खासी और गारो जनजातियों में देखने को आगे मिलते हैं।

3. मातृ-पितृ स्थानीय परिवार (Biological Family)—विभिन्न समाजों में नव-विवाहित दम्पति पति अथवा पत्नी में से किसी एक के भी साथ रहने को बाध्य नहीं होते अपितु दोनों में से किसी के भी साथ रह सकते हैं। इस तरह के परिवारों को मातृ-पितृ स्थानीय परिवार कहा जाता है।

4. नवस्थानीय परिवार (Neolocal Family)—जब पति-पत्नी विवाह के पश्चात् न तो पति अथवा पत्नी के व्यक्तियों के साथ और न पत्नी पक्ष के व्यक्तियों के साथ ही रहते हैं, अपितु अपना अलग घर बनाकर रहते हैं, ऐसे परिवारों को नवस्थानीय परिवार कहा जाता है।

5. मामा स्थानीय परिवार (Mamalocal Family)—इस तरह के परिवार में नव-विवाहित दम्पति पति की माता के भाई यानी माता के परिवार में जाकर रहने लगते हैं। ट्रोब्रियाण्डा द्वीपवासियों में यह परम्परा प्रचलित है कि विवाह के पश्चात् भानजा अपनी पत्नी के साथ माता के घर रहने लगता है।

6. द्वि-स्थानीय परिवार (Duolocal Family)—कुछ स्थानों पर वे परिवार हैं जहाँ विवाह के पश्चात् पति-पत्नी अपने-अपने जन्म के परिवारों में ही रहते हैं। ऐसे परिवार लक्षद्वीप, केरल व अशांटी और जनजाति में पाये जाते हैं।

परिवार के प्रकार्य

(FUNCTIONS OF THE FAMILY)

‘परिवार’ समाज की मूलभूत और मौलिक (प्राथमिक) इकाई होने के नाते समाज की सार्वभौमिक संस्था है। वर्तमान में मनुष्य ने कई ऐसे आश्चर्यजनक आविष्कार किये हैं फिर भी वह ऐसी संस्था का आविष्कार नहीं कर पाया है, जोकि परिवार का स्थान ग्रहण कर सके। परिवार के द्वारा किये जाने वाले कार्यों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—(i) सार्वभौमिक कार्य जो हमें सभी समाजों और संस्कृतियों में देखने को मिलते हैं; (ii) वे कार्य, जिनका निर्धारण विभिन्न संस्कृतियों में वहाँ की सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं के द्वारा होता है। इन्हें हम पारम्परिक अथवा परम्परागत कार्य कह सकते हैं। मौलिक और सार्वभौमिक कार्यों में यौन इच्छाओं की तृप्ति, सन्तान उत्पत्ति, बच्चों का लालन-पालन और मनोवैज्ञानिक कार्यों को शामिल किया जाता है। परिवार के भिन्न-भिन्न कार्यों का निम्नवत् वर्णन किया जा रहा है। ये कार्य जनजातीय समाज के विषय में भी उसी रूप में लागू होते हैं जिस रूप में अन्य समाजों में लागू होते हैं।

I. जैविक कार्य (Biological Functions)

परिवार के जैविकीय कार्य निम्नलिखित हैं—

1. यौन सन्तुष्टि (Sexual Satisfaction)—मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में यौन सन्तुष्टि आवश्यक है। परिवार ही वह समूह है जहाँ पर मनुष्य समाज द्वारा स्वीकृत विधि से व्यक्ति अपनी यौन इच्छाओं को पूर्ण करता है। कोई भी समाज यौन सम्बन्धों को स्थापित करने की नियमहीन और निर्बाध स्वतन्त्रता प्रदान नहीं कर सकता है, क्योंकि यौन सम्बन्धों के फलस्वरूप सन्तान की उत्पत्ति होती है, आतेदारी व्यवस्था जन्म लेती है और पदाधिकार व उत्तराधिकार, वंशनाम इत्यादि की व्यवस्थाएँ भी इससे जुड़ी हुई रहती हैं।

2. सन्तानोत्पत्ति की व्यवस्था (Arrangement for Procreation)—यौन सन्तुष्टि एक शारीरिक क्रिया के रूप में ही समाप्त नहीं होती अपितु इसका परिणाम सन्तानोत्पत्ति के रूप में भी होता है। मानव समाज की निरन्तरता को बनाये रखने हेतु यह जरूरी है कि मृत सदस्यों का स्थान नये सदस्यों से भरा जाये। परिवार ही समाज के इस महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करता है। परिवार के बाहर भी सन्तानोत्पत्ति हो सकती है, लेकिन कोई भी समाज अवैध सन्तान को नहीं अपनाता है। केवल वैध सन्तानों को ही पदाधिकार व उत्तराधिकार दिया जाता है।

3. प्रजाति की निरन्तरता (Continuity of Species)—परिवार ने ही मानव जाति को अमर बनाया है। यही मृत्यु व अमरत्व का संगम-स्थान है। नई पीढ़ी को जन्म देकर परिवार ने मनुष्य की स्थायित्वता व निरन्तरता को बनाए रखा है। गुडे के अनुसार, "यदि परिवार मानव की जैविकीय (प्राणी-शास्त्रीय) आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त व्यवस्था न करे तो समाज समाप्त हो जायेगा।"

II. आर्थिक कार्य (Economic Functions)

परिवार द्वारा किये जाने वाले आर्थिक कार्य निम्नलिखित हैं—

1. आय और सम्पत्ति प्रबन्धन (Income and Property Management)—प्रत्येक परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण हेतु कोई-न-कोई अर्थव्यवस्था जरूर होती है। इस अर्थव्यवस्था के माध्यम से ही वह आय अर्जित करता है। परिवार की गरीबी और समृद्धि आय से ही मालूम होती है। परिवार का मुखिया ही यह निर्धारित करता है कि अपनी आय को परिवार कैसे खर्च करेगा। हर एक परिवार के पास सोना, जमीन, दुकान, जेवर, औजार, पशु एवं नकद इत्यादि के रूप में चल-अचल सम्पत्ति होती है, जिसकी देखभाल और सुरक्षा भी वही करता है।

2. उत्तराधिकार की व्यवस्था (Management of Succession)—परिवार द्वारा उन परम्पराओं और नियमों को विकसित किया जाता है, जिनके द्वारा हर एक व्यक्ति को वंशानुगत सम्पत्ति में अपना हिस्सा मिल सके। यह कार्य परिवार को ही करना होता है। पितृसत्तात्मक परिवार में उत्तराधिकार पिता से पुत्र को मिलता है, जबकि मातृसत्तात्मक परिवार में माता से पुत्री को मिलता है।

3. श्रम का विभाजन (Division of Labour)—परिवार में श्रम विभाजन का सरल रूप वहाँ देखा जा सकता है जहाँ पुरुष, स्त्री और बच्चों के मध्य कार्य का विभाजन होता है। परिवार में कार्य-विभाजन का आधार यौन और आयु दोनों ही हैं। स्त्रियाँ घर के कार्यों को करती हैं, तो पुरुष बाहर के कार्यों को करते हैं तथा बच्चे छोटे-छोटे कार्यों को करते हैं। शक्ति के कार्य पुरुष करते हैं। परिवार के सदस्यों में श्रम-विभाजन आर्थिक सहयोग का मुख्य कारक है।

4. उत्पादन इकाई (Production Unit)—परिवार उपभोग व उत्पादन करने वाली इकाई है। जनजातीय समाजों में तो ज्यादातर उत्पादन का कार्य परिवार द्वारा ही किया जाता है। मानव समाज की जनजातीय अवस्थाओं में परिवार द्वारा ही सम्पूर्ण उत्पादन का कार्य किया जाता था; जैसे—शिकार, पशुपालन और कृषि अवस्था। प्राचीन उद्योगों में भी निर्माण का कार्य परिवार द्वारा ही किया जाता था। आज भी अविकसित तथा अपूर्ण औद्योगिक अवस्था वाले समाजों में निर्माण का कार्य परिवार के लोग ही करते हैं; जैसे—स्त्री, पुरुष और बच्चे। इस तरह परिवार उत्पादन की एक सहकारी उत्पादन इकाई है।

III. शारीरिक कार्य (Physical Functions)

परिवार के शारीरिक कार्य निम्नलिखित हैं—

1. शारीरिक देखभाल (Body Care)—परिवार अपने सदस्यों की शारीरिक देखभाल करता है। परिवार ही विभिन्न अवस्थाओं में अपने सदस्यों की देखभाल और सेवा करता है; जैसे—बीमारी, वृद्धावस्था, असहाय अवस्था, दुर्घटना इत्यादि। गर्भवती माता व नवजात शिशु की शारीरिक देखभाल की जिम्मेदारी भी परिवार पर ही होती है।

2. आश्रय और वस्त्रों की व्यवस्था (Provision of Shelter and Clothing)—परिवार अपने सदस्यों के लिए आश्रय की भी व्यवस्था करता है। घर ही वह जगह है जहाँ जाकर मनुष्य को पूरी तरह से शान्ति मिलती है।

3. बच्चों का पालन-पोषण (Raising Children)—मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है कि उसकी शैशवावस्था अन्य प्राणियों की अपेक्षा लम्बी होती है। इस अवधि में उसका पालन-पोषण परिवार द्वारा ही किया जाता है।

4. भोजन की व्यवस्था (Food Arrangements)—परिवार अपने सदस्यों के अस्तित्व के लिए भोजन की व्यवस्था करता है। आदिकाल से ही अपने सदस्यों के लिए भोजन की व्यवस्था करना

परिवार का ही प्रमुख कार्य रहा है। जनजातीय समाजों में भोजन जुटाना एक सामूहिक क्रिया है। मनुष्य के जीवित रहने के लिए भोजन आवश्यक होता है और जीवित रहकर ही मनुष्य सभ्यता व संस्कृति का निर्माण कर पाने में सक्षम होता है।

IV. समाजीकरण का कार्य (Function of Socialization)

परिवार में ही बच्चे का समाजीकरण शुरू होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया से ही जैविक प्राणी एक सामाजिक प्राणी बनता है। वहाँ उसे परिवार व समाज के रीति-रिवाजों, प्रथाओं, रूढ़ियों एवं संस्कृति का बोध होता है। शनैः-शनैः बच्चा समाज की कार्यकारी इकाई बन जाता है। परिवार ही समाज की संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित करता है। परिवार में रहकर ही ज्ञान का संचय, संरक्षण और वृद्धि होती है।

V. धार्मिक कार्य (Religious Functions)

प्रत्येक परिवार किसी-न-किसी धर्म का अनुयायी होता है। परिवार ही सदस्यों को धार्मिक शिक्षा, धार्मिक प्रथाएँ, नैतिकता, व्रत एवं त्योहार इत्यादि का ज्ञान कराता है। व्यक्ति अपने परिवार के अन्य सदस्यों से ही पूजा-आराधना, पूर्वजों की पूजा इत्यादि धार्मिक कार्यों को सीखता है। एक व्यक्ति परिवार से ही पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, हिंसा-अहिंसा की धारणा को प्राप्त करता है।

VI. शैक्षिक कार्य (Educational Functions)

परिवार ही बच्चे की पहली पाठशाला होती है, जहाँ पर उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। परिवार के द्वारा प्रदान की गयी शिक्षा जीवन-भर आत्मसात् होती रहती है। आदिम काल में जब आज की तरह शिक्षण संस्थाएँ नहीं थीं तो परिवार ही शिक्षा की प्रमुख संस्था थी। परिवार में ही बच्चा प्रेम, स्नेह, दया, सहानुभूति, त्याग, बलिदान, आज्ञापालन व कर्तव्यपरायणता का अध्ययन करता है।

VII. राजनीतिक कार्य (Political Functions)

परिवार राजनीतिक कार्यों को भी करता है। आदिम व सरल समाजों में जहाँ प्रशासक अथवा जनजाति का मुखिया अथवा प्रधान परिवार के मुखियाओं से राय लेकर कार्य करता है वहाँ तो परिवारों द्वारा महत्वपूर्ण राजनीतिक भूमिका निभायी जाती है। भारत देश में संयुक्त परिवारों में कर्ता ही परिवार में प्रशासक होता है और वही परिवार की समस्याओं, झगड़ों को निपटाने व उनका समाधान और न्याय करने वाला जज होता है।

VIII. सांस्कृतिक कार्य (Cultural Functions)

परिवार ही समाज की संस्कृति की सुरक्षा करता है, नयी पीढ़ियों को संस्कृति का ज्ञान देता है और संस्कृति का हस्तान्तरण करके संस्कृति की निरन्तरता व स्थायित्व को बनाये रखता है।

IX. मनोरंजन के कार्य (Recreational Functions)

अपने सदस्यों के लिए स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करना परिवार का हमेशा से ही मुख्य कार्य रहा है। छोटे बच्चों की प्यारी मीठी बोली, उनके आपसी झगड़े व दाम्पत्य प्रेम परिवार के मनोरंजन के केन्द्र हैं। समस्त जनजातियों में विभिन्न लोक-गाथाओं और वैयक्तिक अनुभवों के द्वारा परिवार अपने सदस्यों को मनोरंजन का माहौल प्रदान करता है। इसके अलावा वह धार्मिक उत्सवों और त्योहारों का आयोजन भी करता है। इससे परिवार के सदस्यों का तनाव दूर होता है और आनन्द का संचार होता है।

X. मनोवैज्ञानिक कार्य (Psychological Functions)

परिवार ही अपने सदस्यों को मानसिक सुरक्षा व सन्तुष्टि प्रदान करता है। परिवार के सदस्यों में आपसी प्रेम, सहानुभूति व सद्भाव की भावना होती है। वही बच्चे में आत्मविश्वास उत्पन्न करती है। जब बच्चों को माता-पिता का प्रेम नहीं मिल पाता, वे अपराधी और विघटित व्यक्तित्व वाले बन जाते हैं।

नातेदारी और विवाह का विषय मानवशास्त्रीय विचारधारा तथा अध्ययन पर दीर्घकाल तक बना रहा है। विगत सौ वर्षों से इस विषय का विकास हो रहा है। विभिन्न मानवशास्त्रियों ने विश्व के अलग-अलग भागों में बसने वाली जनजातियों के समाजों का अध्ययन कर अपनी रचनाएँ व्यक्त की हैं तथा परिवार, नातेदारी विवाह व अन्य मानवशास्त्रीय विषयों ने हमारे ज्ञान को बढ़ाया है। नातेदारी के अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न मानवशास्त्रियों के नाम उल्लेखनीय हैं; जैसे—लुईस मॉर्गन, रैडक्लिफ ब्राउन, मैक्लेनन, हेनरीमेन, इवान्स प्रिचार्ड, मैलिनोवस्की, मुरडॉक, मेयर फोरटेस, लुई ड्यूमां एवं लेवी स्ट्रॉस इत्यादि।

“मानवशास्त्र में नातेदारी का वही महत्व है जो दर्शनशास्त्र के लिए ‘तर्क’ का है या कला के लिए ‘नानता’ का। वह विषय की मूलभूत साधना है। वह उसके आकर्षण का एक अंग है।” नातेदारी का अध्ययन शुरू करने वालों में वकील और विधिशास्त्र के विद्यार्थी थे। इसीलिए वर्तमान में नातेदारी का अध्ययन अधिकार, दावे, दायित्व, संविदा, पितृ अधिकार, पितृ बन्धुता जैसी सामूहिक अवधारणाओं और कानूनी शब्दावली से परिपूर्ण है। सम्पत्ति का हस्तान्तरण एवं उत्तराधिकार किसे होगा, इसका निर्धारण नातेदारों में वरीयता के आधार पर होता है।

नातेदारी और विवाह जीवन के मूलभूत तथ्य हैं। सृष्टि के आरम्भ से ही जिन बातों ने व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाँधने में विशेष भूमिका निभायी है, उनमें आर्थिक हित व सामूहिक सुरक्षा आवश्यक है। सामूहिक सुरक्षा की भावना ने बहुत-से छोटे-छोटे संघों को बनाने की प्रेरणा प्रदान की जो परिवार से लेकर राष्ट्र तक हैं। व्यक्ति एक समान भाषा, धर्म, जाति और राष्ट्र के लोगों के मध्य स्वयं को अधिक सुरक्षित महसूस करता है, किन्तु इससे भी अधिक सुरक्षित वह स्वयं को नातेदारों में पाता है, जिनके साथ उसके सामाजिक, आर्थिक व नैतिक हित जुड़े हैं। व्यक्ति राष्ट्रीयता, धर्म, प्रदेश सब कुछ बदल सकता है, लेकिन नातेदारी नहीं, क्योंकि इसमें रक्त का सम्बन्ध है। अतएव जंगली तथा असभ्य जनजातियों से लेकर सभ्य समाजों तक में इसे पुष्ट और विश्वसनीय बताया जाता है। विश्व में ऐसे बहुत कम लोग हैं, जो वंश कुलों की पहले से चली आ रही कीर्ति अथवा अपकीर्ति से प्रभावित नहीं होते हैं। हमें अपनी वंशावलियों को जानने में अत्यन्त गर्व महसूस होता है।

सामान्य शब्दों में नातेदारी व्यवस्था रिश्ते-नाते के आधार पर बने मानवीय सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। नातेदारी बन्धन व्यक्तियों के मध्य के सूत्र होते हैं, जो या तो वंश परम्परा के द्वारा रक्त सम्बन्धियों या विवाह के द्वारा सम्बन्धियों को जोड़ते हैं। इसलिए व्यक्ति दो परिवारों का सदस्य माना जाता है—पहला, उस परिवार का जिसमें उसका जन्म हुआ है और दूसरा, उस परिवार का जिसमें उसका विवाह हुआ है। रक्त के द्वारा बने नातेदारों को समरक्त नातेदार व विवाह के द्वारा बने नातेदारों को वैवाहिक नातेदार कहा जाता है।

नातेदारी का अर्थ और परिभाषाएँ

(MEANING AND DEFINITIONS OF KINSHIP)

मनुष्य का जन्म परिवार में होता है और यहीं से उसका पालन-पोषण शुरू होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति परिवार से लगातार कुछ-न-कुछ सीखता ही रहता है। परिवार में ही उसे अपने रीति-रिवाजों, परम्पराओं और रूढ़ियों की शिक्षा प्राप्त होती है। परिवार के लोग ही मनुष्य के विचारों, मूल्यों, जीवन के ढंगों व भावनाओं इत्यादि को विकसित करते हैं। प्रत्येक बालक को

2. **विवाह सम्बन्धी नातेदारी (Affinal Kinship)**—इसमें उन सभी नातेदारों को शामिल करते हैं, जो विवाह के सम्बन्ध के आधार पर एक-दूसरे से जुड़े होते हैं; जैसे—एक स्त्री अपने पति या एक पति का अपनी पत्नी से सम्बन्ध या पति-पत्नी, जेठानी, देवरानी, भाभी, पुत्रवधू, दामाद, बहनोई, जीजा, फूफा, नन्दोई, मौसा, साढ़ू, चाची, मामी इत्यादि रिश्तेदारों को विवाह सम्बन्धी नातेदारों में शामिल किया जा सकता है।

नातेदारी की भूमिका और महत्व (ROLE AND IMPORTANCE OF KINSHIP)

नातेदारी की भूमिका और महत्व को निम्नांकित शीर्षकों के द्वारा समझा जा सकता है—

1. **विवाह और परिवार का निर्धारण (Determination of Marriage and Family)**—नातेदारी ही यह निर्धारित करती है कि एक व्यक्ति के विवाह का क्षेत्र क्या होगा। किस तरह का विवाह निषिद्ध है; किसे मान्यता और किसे अधिमान्यता प्रदान की गयी है। अन्य शब्दों में, अन्तःविवाह, बहिर्विवाह, समलिंग सहोदर और विषमलिंग सहोदर विवाह इत्यादि का निर्धारण नातेदारी के आधार पर होता है। परिवार में रक्त और विवाह सम्बन्ध पर आधारित सदस्य होते हैं। दोनों ही तरह के सदस्यों को नातेदार कहा जाता है। परिवार के प्रकार अलग-अलग नातेदारों की भूमिका में पाये जाने वाले भेदों को व्यक्त करते हैं। उदाहरणार्थ, मातृ-सत्तात्मक परिवार में भाई की भूमिका अपनी बहिन के परिवार में महत्वपूर्ण होती है, वही परिवार का संचालन करता है और वही सभी तरह की आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र भी होता है। परिवार की शक्ति और सत्ता उसके ही हाथ में होती है। पति ऐसे परिवारों में महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभाता है। इसके विपरीत पितृसत्तात्मक परिवारों में बहिन के परिवार में भाई की भूमिका गण्य होती है। रेडक्लिफ ब्राउन जैसे मानवशास्त्री ने नातेदारी व्यवस्था का प्रकार्यात्मक वर्णन किया है। उसकी यह मान्यता है कि विवाह और नातेदारी एक-दूसरे के मध्य व्यवस्था उत्पन्न करते हैं।

2. **वंश, उत्तराधिकार एवं विरासत का निर्धारण (Determination of Descent, Inheritance and Succession)**—नातेदारी वंशावली का निर्धारण करती है। परिवार, वंश, गोत्र, भ्रातृदल और अर्द्धांश नातेदारी के ही स्वरूप हैं। भूतकाल के वंश सम्बन्धियों का ज्ञान अर्जित करके व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह इतिहास-विहीन नहीं है अपितु उसकी भी जड़ें गहरी हैं। एक व्यक्ति की सम्पत्ति और पद का हस्तान्तरण किन लोगों में होगा, कौन-कौन लोग उसके दावेदार होंगे, यह नातेदारी के आधार पर ही निर्धारित होता है। नातेदारी का शुरुआती अध्ययन वकीलों और विधिशास्त्रियों के द्वारा सम्भवतः इसलिए किया गया था कि वे अधिकार, दायित्व, दावे, संविदा, पितृ अधिकार, पितृ-बन्धुता इत्यादि का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें कानूनी जामा पहनाना चाहते थे। वे इसके साथ-साथ ऐसे नियमों की रचना करना चाहते थे कि कौन किसका उत्तराधिकारी होगा और किसे क्या मिलेगा? अगर नातेदार के बाद किसी अन्य को उत्तराधिकार का अधिकार मिलता है तो नातेदारी की व्याख्या होती है तथा नातेदारों में वरीयता क्रम को निश्चित किया जाता है। पितृवंशीय और मातृवंशीय परिवारों में वंश उत्तराधिकार और वंश पदाधिकार के नियम अलग-अलग हैं। सभी समाजों में नातेदारी के सम्बन्धों का प्रयोग सम्पत्ति के स्वामी व उत्तराधिकारियों, पदाधिकारियों व उसके उत्तरवर्ती अधिकारियों के मध्य सम्बन्धों को परिभाषित करने हेतु किया जाता है।

लूसी मेयर के शब्दों में, “सरल प्रविधि वाले समाजों में किसी व्यक्ति का समाज में स्थान, उसके अधिकार व कर्तव्य, सम्पत्ति पर उसका दावा, अधिकांशतः दूसरे सदस्यों के साथ उसके जन्म-जात सम्बन्धों पर निर्भर होते हैं। ऐसे समाजों में संगठन के चाहे जो भी सिद्धान्त हों, प्राथमिक समूह बन्धुत्व से जुड़े रहते हैं।”

3. **सामाजिक दायित्वों का निर्वाह (Fulfilling Social Obligations)**—लोवी का कहना है कि एक रिश्तेदार दूसरे रिश्तेदार को बिना फल की आशा किए निःशुल्क सेवाएँ प्रदान करता है, जबकि उन्हीं सेवाओं के लिए हमें बाहर के व्यक्ति को उसकी कीमत देनी होती है। रिश्तेदार एक नैसर्गिक